Inspira- Journal of Modern Management & Entrepreneurship (JMME)
ISSN : 2231–167X, General Impact Factor : 2.5442, Volume 08, No. 04, October, 2018, pp. 348-354

राजरत्नाकर महाकाव्य में निरूपित धार्मिक चेतना

रघुनाथ मीणा*
डॉ. अनिता खुराना**

i:Lrkouk

प्राचीन काल में संस्कृति के लिए एक अधिक व्यापक, अधिक उदात्त और अधिक गौरव पूर्ण शब्द का प्रयोग किया जाता था और वह था–धर्म। राष्ट्र का जो धर्म होता था वही उसकी सबसे बड़ी विभूति मानी जाती थी। उसकी रक्षा में ही राष्ट्र की रक्षा मानी जाती थी उसके स्वरूप में ही राष्ट्र की झांकी देखी जाती थी। सम्पूर्ण संस्कृत साहित्य में इसी की व्याख्या, इसी धर्म का स्वरूप निरूपण और इसकी गौरवगाथा गुंजायमान है।

प्राचीन युग में जो कुछ भी संस्कृत था जो कुछ भी उदात्त था जो कुछ भी महान् था और जो कुछ भी महिमामय था उसी को धर्म कहते थे।उसके चिंतन में ही हमारी चेतना सजीव थी। उसके आचरण में ही हमारे जीवन का सौंदर्य मुखरित होता था। सच्चे अर्थो में यही हमारी संस्कृति थी।

भारतीय वांग्मय में धर्म

धर्म शब्द का प्रयोग भारतीय वांग्मय में अतीव प्राचीन काल से होता आया है। ऋग्वेद में भी हमें धर्म का बीज दिखलाई पड़ता है। धर्म शब्द ''धृञ् धारणे'' धातु में मन् प्रत्यय लगाने पर व्युत्पन्न हुआ है। इस प्रकार धर्म शब्द का धातुगत अर्थ है धारण करना, अवलम्बन प्रदान करना तथा पालन करना। 'धर्म ' शब्द का प्रयोग उन कर्त्तव्यों और बंधनों के लिए भी हुआ है, जो व्यक्ति और समष्टि में सामंजस्य स्थापित करते हैं तथा उनके संतुलित विकास में सहायक होते हैं। ऋषियों ने धर्म के द्वारा ही संसार – सागर को पार किया है । तैत्तिरीय आरण्यक में इसे समस्त विश्व की प्रतिष्ठा बताया गया है धर्म के आचरण द्वारा अपने पापों को दूर करते हैं। धर्म में ही सब कुछ प्रतिष्ठित है अतः धर्म को सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

महाभारत में धर्म को आचार प्रसूत कहा गया है जिसे सर्वोपरि मानते हुए शासकों का भी शासक घोषित किया गया है अतः धर्म का पालन अवश्य करना चाहिए।

''धर्म छुरे की धार से भी अधिक तीक्ष्ण तथा पर्वत से अधिक विशाल और भारी है।''[1]

शास्त्रों में कहा गया है कि जो सबको धारण करता है तथा लोक यात्रा निर्वहन हेतु जिसे सम्पूर्ण प्राणी धारण करते है, उसे धर्म कहते है ।

वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्यः च प्रियमात्मनः ।
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षात् धर्मस्य लक्षणम्''।। [2]

अर्थात् ऋग्वेदादि, स्मृतियॉं, सत्याचरण अपने मन की प्रसन्नता ये चार धर्म के साक्षात् लक्षण है अर्थात् इनके द्वारा धर्म जाना जाता है वैदिक साहित्य में धर्म शब्द प्रकृति या ईश्वर के नियमो के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। ऋग्वेद का मूल शब्द तो ऋत है जो सृष्टि के अखण्ड देशकाल–व्यापी नियमों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

---

* शोधार्थी, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान।
** सह आचार्य–संस्कृत, सम्राट पृथ्वीराज चौहान राजकीय महाविद्यालय, अजमेर, राजस्थान।

अथर्ववेद के पृथ्वी सूक्त में पृथ्वी को ''धर्मणा धृता'' अर्थात धर्म के द्वारा धारण की हुई कहा गया है।[3] ऐसा प्रतीत होता है कि धर्म शब्द का वहीं ऊँचा अर्थ ग्रहण किया जिसका सम्बन्ध धृञ् धातु से है ।

''धर्म '' शब्द व्यक्तिगत जीवन के नियमों के लिए सामाजिक जीवन धारण करने वाले नियमों के लिए तथा सम्पूर्ण संसार के नियमों को धारण करने वाले नियमों के लिए प्रयुक्त हुआ है। जीवन के जो नीति सम्बन्धी नैतिक नियम है वे इसी धर्म शब्द के अन्तर्गत आते है।

वैदिक संहिताओं में धर्म का स्वरूप इस प्रकार अभिव्यक्त किया है–

''सुविज्ञान चिकितुषे जनाय सच्चासच्च वचसीपस्पृधाते!

तयोर्यत्सत्यं यतरद्वजोयस्त दित्सोमोऽवति हन्त्यसत।।''[4]

ऋग्वेद में कहा गया है कि सत्य और असत्य में सदैव प्रति स्पर्धा बनी रहती है। सोम सत्य कि रक्षा करता और असत्य का हनन करता है।

ब्राह्मण ग्रन्थों में यज्ञपरक धर्म का प्रतिपादन किया गया है। जब ऋत और सत्य इन दोनों शब्दों का एक साथ प्रयोग होता है तब मानसिक धरातल पर होने वाले सत्यानुभूति को ऋत कहते है तथा ऋत का प्रत्यक्ष भोतिक रूप सत्य कहलाता है '

''ऋतं सत्येध्यापि''[5]

वृहदारण्यक उपनिषद् में धर्म की सृष्टि परमात्मा से होना बतलाया है धर्म सबका नियामक है । धर्म से श्रेष्ठ कुछ भी नहीं हैं। सत्य ही धर्म है। इसलिए हमें असत्य से सत्य की ओर अभिगमन करना चाहिए ।

वाल्मीकि रामायण में श्रीराम ने अपने अनुज लक्ष्मण से धर्म की प्रशंसा करते हुए कहा है कि संसार में धर्म ही श्रेष्ठ है तथा धर्म में ही सत्य प्रतिष्ठित है। श्रीराम अपनी माता से कहते है कि –

''धर्मसंक्षिप्तमप्येतत् पितुर्वचनमुत्तमम्'' [6]

धर्महीन राज्य के लिए मैं महान् फलदायक धर्म के पालन से प्राप्त होने वाले सुयश का त्याग नहीं कर सकता हूँ। धर्म की सूक्ष्मता और गहनता का उल्लेख करते हुए महाभारत में कहा गया है कि युधिष्ठर के द्वारा जुए के दांव में द्रोपदी को हार जाने पर दुर्योधन के आदेश से दुःशासन द्रोपदी को राजसभा में घसीट कर ले गया । उस समय द्रोपदी ने दुर्योधन की राजसभा में उपस्थित सभी ज्ञानवृद्ध सभापदों को सम्बोधित करते हुए कहा कि आप लोग मुझे बताएं कि क्या मैं जुए में दुर्योधन के द्वारा धर्मानुसार जीत ली गई हूँ ।

'' इमं प्रश्नमिमे ब्रुत सर्व एवं सभापदः

जितां वाप्यजितां वा मां मन्यध्वे सर्व भूमिपाः।।''[7]

अतः धर्म सर्वज्ञ और सर्व द्रष्टा ऋषियों के द्वारा प्रतिपादित तथा शिष्ट पुरुषों के द्वारा आचरित हैं।

राजरत्नाकर महाकाव्य में धार्मिक चेतना

महाकवि सदाशिव कृत राजरत्नाकर महाकाव्य में वर्णन से प्रतीत होता है कि मेवाड़ का शासक वर्ग तथा जन साधारण धार्मिक कार्यों में अत्यधिक रुचि रखता था। विभिन्न प्रकार के धार्मिक अनुष्ठान किए जाते थे, जीवन का हर पक्ष धर्म से अनुशासित था। मेवाड़ ऐश्वर्य कामियों को जितना प्रिय रहा है ठीक वैसे ही धर्म प्रेमियों को भी लुभाता रहा है। यहां की जनता का ईश्वर में विश्वास और सन्तों में श्रृद्धा प्रारम्भ से ही अडिग रही है। अतः इस प्रदेश को सन्तों और शूरमाओं की क्रीड़ा स्थली कहने का यही कारण है। राज समुद्र के प्रतिष्ठा समारोह के अवसर पर तथा दैनिक जीवन में जो धार्मिक क्रिया कलाप व अनुष्ठान सम्पन्न किए जाते थे उनकी यथेष्ठ जानकारी हमें राजरत्नाकर में प्राप्त होती है। राज रत्नाकर में विभिन्न देवी, देवताओं, पूजा, व्रत तथा दान का जो विवरण है उससे इस बात की पुष्टि होती है कि जीवन के हर महत्त्वपूर्ण अवसर पर किसी न किसी प्रकार के धार्मिक कृत्य सम्पन्न किए जाते थे। महाराणा राजसिंह स्वयं ब्रह्म पुराण पढ़ने में रुचि रखता था। इससे काल में कर्मकाण्ड की अधिक महत्ता थी। इस बात की पुष्टि राजसमुद्र की प्रतिष्ठा का कार्य शुद्ध

शास्त्रोक्त विधि से सम्पन्न होने तथा पुराणों और कर्मकाण्ड के ग्रन्थों की प्रतिलिपियों के प्राप्त होने से होती है। राजसिंह के काल में मेवाड़ राज्य एक धर्म निरपेक्ष राज्य भी था, उस समय सभी धर्मों को मानने वालों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी। राजरत्नाकर के अध्ययन से तत्कालीन धार्मिक जीवन के विविध पक्षों की जानकारी प्राप्त होती है, जो इस प्रकार है –

देवता

शिव या एकलिंग मेवाड़ के राजाओं के आराध्य देवता थे। राजरत्नाकर में शिव का उल्लेख अनेक बार आता है। सदाशिव ने काव्य का आरम्भ भी एकलिंग की स्तुति से किया है।

''भाले यस्यैन्दवी लेखा लेखा यस्यांघ्रिसेवकाः।
स वः सदैक लिंगारण्य : शिवो दिशतु मंगलम्।''[8]

चन्द्रमा की कला जिनके मस्तक पर है और देवता जिनके चरणों की सेवा करते हैं वे एकलिंग नामक शिव आप सबका सदैव मंगल करें। सदाशिव के विवरण से स्पष्ट है कि राजसिंह की शिव में अटूट भक्ति थी। एक बार जब गरीबदास ने राजा से कोई बड़ा पुण्य कराने का आग्रह किया तो राजसिंह ने उसे आदेश दिया कि वह शिव की पूजा कर रात में शिव के समीप शयन करें तथा शिव जो आज्ञा दे वैसा ही कार्य करें।

ऐसा प्रतीत होता है कि सदाशिव राजसमुद्र के निर्माण के पीछे देवी प्रेरणा दर्शाने व स्वयं को तथा गरीबदास को महिमा मण्डित करने का प्रयास कर रहा है पर फिर भी ये अलौकिक तथ्य इस बात का संकेत करते है कि शिव मेवाड़ के राणाओं के लिए बेहद पूजनीय थे। शिव के पश्चात् विष्णु एक प्रमुख देवता के रूप में उभरकर सामने आते हैं। जगत् सिंह व राजसिंह दोनों ही विष्णु के प्रति भक्ति भाव रखते थे।

''हरि हरा दियुगार्पित चेतसा
रविनिभेन गुण प्रथितेन ।
नृपति नापि तथा निज मन्दिरे
द्विरददानमकारि तुला पुनः।।''[9]

विष्णु व शिव दोनों के प्रति अर्पित चित्तवाले, सूर्य–तुल्य तथा गुणों से विख्यात राणा ने भी अपने प्रासाद में गजदान व तुलादान किया। मेवाड़ में मुख्य रूप से भील जाति के लोग रहते हैं, उस समय भी ये केसरिया नाथ जी (ऋषभदेव) के केशर का जल पीने पर ये कभी झूठ नहीं बोलते। ये नक्षत्रों में विश्वास करते थे। तत्कालीन समय वरूण का भी देवताओं में प्रमुख स्थान था। वरुण जल का देवता माना गया है। राज समुद्र के प्रतिष्ठा महोत्सव से सम्बन्धित धार्मिक अनुष्ठानों में प्रमुख रूप से वरूण की पूजा की गई।

''तनुवरुणवेद्यां वासवादित्यसूनू –
दलपतिधन दानां दिक्षु सर्वार्त्वजीनाः
हविरनुसुरमंत्र स्वस्व सूक्तं पठन्तो
ह्यजुह वुरधिकाज्यं सेवित ब्रह्मचर्याः''[10]

तत्पश्चात् इन्द्र, यम, वरूण तथा कुबेर की दिशाओं में (स्थित), ब्रह्मचर्य को धारण करने वाले, ऋत्विज पद के योग्य सभी व्यक्तियों ने सस्वर मंत्रों वाले अपने–अपने सूक्तों का पाठ करते हुए वरूण की (यज्ञ) वेदिका में प्रचुर घृत से युक्त हवि की आहुतियां दी।

देवियां

मेवाड़ में देवियों की पूजा भी होती थी। शिव की अर्धांगिनी होने के कारण पार्वती पूजनीय थी। सदाशिव ने काव्य के प्रथम सर्ग में पार्वती की स्तुति की है।

'' द्युतिमति निटिले सतण्डुलाढयं
प्रिय कृत कुंकुम विन्दुमाद धाना ।
अलियुग नयना शिवा शिवं वो
वितरतु कल्प लतेव पुष्पि ताग्रा''[11]

कान्तिमान ललाट पर प्रियतम (शिव) द्वारा बनाये गये अक्षत युक्त सौभाग्य –बिन्दु को धारण करने वाली तथा भ्रमर युगल के समान नेत्रों वाली पार्वती अग्रभाग में पुष्पित कल्पलता के समान आप सबका कल्याण प्रदान करें। इसके अतिरिक्त आढनगर में स्थित हरसिद्धि देवी भी समृद्धि प्रदायिनी मानी जाती थी। राजरत्नाकर में यह उल्लेख आया है कि राजसिंह ने नवरात्रा में सर्वऋतु विलास नामक उद्यान के वृक्षों में उत्पन्न पुष्पों व सरोवरों के कमलों से हरसिद्धि की पूजा की। इस प्रकार उस समय देव पूजा के साथ देवियों की पूजा भी श्रृद्धा पूर्वक की जाती थी।

मन्दिर निर्माण व मूर्ति प्रतिष्ठा

राजरत्नाकर में मेवाड़ के महाराणाओं द्वारा बनवाए गए मंदिरों व मूर्ति प्रतिष्ठा का विवरण प्राप्त होता है। सदाशिव के विवरण से ज्ञात होता है कि राहप व माहप ने केलुवा गांव में विष्णु के मन्दिर बनवाये।

'' प्रासादं कारयामास माहपः कमलापतेः।
राहपेण रमाभर्त्तुः प्रासादोऽकारि तत्रहि''[12]

माहप ने कमलापति (विष्णु) का मन्दिर बनवाया। राहप के द्वारा भी रमापति (विष्णु) का मन्दिर बनवाया गया। कुम्भा ने पुष्कर में आदि वराह देव का मन्दिर बनवाया तथा गया गदाधर की मोक्ष दायिनी प्रतिमा का निर्माण कराया। उन्होंने मांडत्यपुर से हनुमान् की मूर्ति को लाकर कुम्भलगढ़ में स्थापित किया।

''समांडत्यपुराद रम्यादंजनागर्भ संभवम्
देवं संस्था पयामास कुंभ दुर्गे नरेश्वरः''[13]

उस नरपति ने रमणीय मांडव्यपुर (मंडोर) से लाकर अंजना के गर्भ से उत्पन्न देवता (हनुमान्) को कुम्भलगढ़ में स्थापित किया। महाकाव्य में पूजा की विविध विधियों का भी विवरण किया है। गणेश स्थापना, शिव सूक्त पाठ, पुष्पों के उपहार तथा बलि भेंट द्वारा पूजा का वर्णन किया गया है। नवरात्रि में राजसिंह द्वारा हर सिद्धि व दोष रहित प्रदोषकाल में विजयादशमी की पूजा किये जाने का विवरण दिया है।

पूजा एवं आराधना

राजरत्नाकर के अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि नवरात्र की महाष्टमी के दिन क्षत्रिय लोग अस्त्रों की पूजा करते थे तथा दुर्गा को भैंसे या बकरे की बलि देकर प्रणाम करते थे तथा दशमी के दिन वे स्तुतियों द्वारा शमी वृक्ष व अश्वों की पूजा करते थे। उस समय भैरव, रामदेव, खागदेव, बाघदेव, बापजी इत्यादि देवता और अम्बिका, कालिका, शीतला इत्यादि देवियों की पूजा और प्रार्थना करते थे तथा वृक्ष, नदी, पहाड़ आदि जो प्राकृतिक वस्तुएँ है उनके अधिष्ठाता देवता होते थे। वे इस बात पर विश्वास करते थे कि ये सभी मनुष्यों पर अपना प्रभाव रखते हैं। कवि ने वर्णन किया कि राज समुद्र के प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर राजसिंह ने पुष्पों, गंगाजल, अगरु, धूप, नारियल तथा स्तुतियों से नदी के जल की पूजा की –

'' विकलित सुनोभिर्जाहवबीयै : पयोभि :
बहुभिर गुरु र्धूप र्नालिके रै : सुगोभिः।
सचिव वर समेतो राजसिंहोऽर्चयित्वा
सरिदुदक मुपैसीद् मध्यमेऽहनों विभागे।।''[14]

मनोहर पुष्पों, गंगाजल, अगरु की धूप, नारियल तथा सुन्दर वचनों से नदी के जल की पूजा कर राजसिंह श्रेष्ठ मंत्री सहित दिन के मध्य भाग में लौट आया।

व्रत, उपवास, जप व नियम

राजरत्नाकर में विभिन्न अवसरों पर किए जाने वाले व्रत, उपवास, जप व पालन किए जाने वाले नियमों के बारे में जानकारी मिलती है। संवत 1713 में राजसिंह ने ब्रह्माण्डदान किया। इस समय उन्होंने प्रियजनों के मना करने पर भी निर्जल उपवास रखा तथा गंगा जल से स्नान किया –

''स वारितो ऽ पीस्ट जनैः समस्तै –
रुपोषणं शुष्कतरं चकार ।
सस्नौ द्वितीयेऽ हनि च प्रभाते
पुनः पुनः गांगघटो दकेन''[15]

सभी प्रियजनों के मना करने पर भी उसने निर्जल उपवास रखा तथा दूसरे दिन भी सुबह गंगाजल के घड़ों से अनेक बार स्नान किया। इसी प्रकार राणा ने सूत्र वेष्टन के दौरान ही व्रत के नियम का पालन करते हुए महारानी के साथ बछड़े के पीने से बचा पवित्र कपिला गाय का दूध ही पिया तथा स्वर्णिम पलंग आदि के होने पर भी उन्होंने व्रत के अनुष्ठान के लिए दर्भ पर ही शयन किया।

तीर्थ यात्रा

कवि के विवरण से प्रतीत होता है कि तीर्थ यात्राएँ लोकप्रिय थी। स्त्री व पुरूष दोनों ही तीर्थ यात्राओं पर जाते थे। राजा मोकूल अपनी पत्नी सहित द्वारिका की तीर्थ यात्रा पर गया। क्षेत्र सिंह द्वारा प्रयाग के अनेक धर्म स्थलों का जीर्णोद्वार कराने का उल्लेख भी सदाशिव ने किया है। कर्णसिंह ने शूकर तीर्थयात्रा की –

''यः कर्ण सिंहोऽर्कजकर्ण तुल्यः
कर्णान्त विश्रान्त सदक्षिकोण :।
राज्ञः कुमारोऽपिस शौक राख्ये
तीर्थोत्तमे तार तुलां चकार ।।''[16]

कानों के छोरों तक फैले हुए सुन्दर नेत्रों वाले एवं सूर्य पुत्र कर्ण के तुल्य जिस कर्णसिंह ने जब वे राजकंवर ही थे, शूकर नाम के उत्तम तीर्थ में श्रेष्ठ तुलादान किया। इसके अतिरिक्त राजसिंह के पुरोहित गरीबदास ने विक्रम संवत 1721 में कुरूक्षेत्र के प्रसिद्ध तीर्थ स्थल ईश सरोवर की यात्रा तथा कनखल जाने का वर्णन मिलता है। इन तीर्थ यात्राओं के द्वारा साधारण जन अपनी दैनिक चर्या की नीरस जिन्दगी से थोड़ा विश्राम पा लेते थे। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि उस समय तीर्थ यात्रा की प्रथा भी अच्छी प्रकार से प्रचलित थी।

श्राद्ध तर्पण

कवि ने पितरों की प्रसन्नता और उनकी पार लौकिक सद्गति के लिए श्राद्ध किये जाने का वर्णन किया है, राजसमुद्र के प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर राजसिंह द्वारा पुष्प, दही, कुंकुम व अक्षत से वृद्ध श्राद्ध (नान्दी) श्राद्ध किये जाने का वर्णन मिलता है :–

'' स कुसुमदधि दूर्वाकुंकुमै रक्षतैश्च
प्रथममकृत वृद्ध श्राद्ध मुर्वी महेन्द्र : ।
तदनु खचर पीठं साधिदैवं स्वयं भू
कलश मखिल मातृ स्थापनं पूजनं च ।।''[17]

तब पुरोहित का पुत्र रणछोड़राय जिसने (यजुर्वेद की) माध्यन्दिनी शाखा का सम्यक अभ्यास किया है, वहाँ आकर चांदी के पात्र में स्थित भगवान विष्णु का चरणामृत तथा यज्ञोपवीत उनके हाथ में देता है। सदाशिव

ने वर्णन किया कि ''सूर्य के कन्या राशि के समीप आने पर राजासिंह ने चतुर्थी को राजनगर में पिता का श्राद्ध किया। ''

''कन्या राशिमुपायते भास्वति क्षितिपालकः
चतुर्थ्या जननी श्राद्धं सोऽकरोन्नर नायकः।।''[18]

स्त्रियों की धार्मिक दशा

किसी भी समाज में स्त्रियों की दशा को समाज की उन्नति या अवनति का मापदण्ड माना का सकता है। राजरत्नाकर के अध्ययन से मेवाड़ में स्त्रियों की धार्मिक दशा की एक झलक हमारे समक्ष प्रस्तुत होती है। धार्मिक अनुष्ठानों में पत्नी भी पति की सहभागिनी होती थी। वस्तुतः कोई भी धार्मिक अनुष्ठान बिना पत्नी के पूरे नहीं होते थे। स्त्रियों को भी पुरूषों के समान धार्मिक समारोहों में भाग लेने का अधिकार था। राजपरिवार की स्त्रियों के अतिरिक्त अन्य स्त्रियां भी राणा के जुलूस के साथ–साथ राज समुद्र के तट पर गई थी।

''तेनावरोध सहीतो नृपतिः पथैषी
द्वादित्रघोषबधिरीकृत दिग्वि भागः ।
कासार तीन मधिगम्य कृतोपकार्य
यानादवातर दहीन पराक्रम श्च ।।[19]

बाजों के निनाद से दिशाओं के भागों को बहरा करते हुए प्रबल पराक्रमी राजा रानियों–सहित उसी मार्ग से निकला और पट–भवनों (तम्बुओं) से युक्त सरोवर तट पर पहुँचकर यान से उतरा। तत्कालीन समय में स्त्रियाँ सती भी होती थी। इस संदर्भ में सदाशिव ने कपिल नामक साधु के दिवंगत होने पर उसकी स्त्री वेदवती को अपने मृत पति के साथ होते बताया है।

''शरीरावयवै र्भर्त्तुर्वह्निना विकटार्चिषा ।
मां ज्वालय महाभाग याचेऽहम् धुनेचि च ।।[20]

हे महाभाग ! प्रचण्ड लपटों वाली अग्नि से पतिदेव के अंगों के साथ मुझे जला दो, यही अब तुमसे मेरी याचना है। राणाओं की मृत्यु पर किसी भी रानी के सती होने का उल्लेख सदाशिव ने नहीं किया है। संभवतः यह कुप्रथा अधिक व्यापक रूप में प्रलित नहीं थी कुछी स्त्रियां अपने पति के साथ सती होती थी।

धार्मिक विश्वास

तत्कालीन समय में भी धर्म के प्रति कितना विश्वास था। धर्म से जीवन अनुशासित था। सदाशिव के विवरण से ज्ञात होता है कि मानसिंह ने प्रताप पर आक्रमण किया तो महाराणा प्रताप ने मुहूर्त निकलवाकर ही सेना सहित मुगल सेना का सामना करने के लिए प्रस्थान किया –

''तात्कालिकं समधिगम्य मतोमुहूर्त्त
वादि त्रघोषबधिरी कृत दिग्वि भागः।
योदधुं स कूर्मपति सैन्यक सम्मुखाध्वा
बेगाद् यया वुदयसिंह सुसतो हरि श्री :।।''[21]

तदनन्तर उसी समय का मुहूर्त निकलवा कर तथा (युद्ध के) वाद्यों के घोष से दिशाओं के भागों को बहरा बना कर सिंह के समान शोभा शाली वह उदयसिंह का पुत्र कछवाहा पति की सेना के सामने का मार्ग ग्रहण कर युद्ध के लिए वेग से चल पड़ा। राजरत्नाकर महाकाव्य के अध्ययन से प्रतीत होता है कि साधारण जन धार्मिक विश्वासों से बंधे हुए थे । प्रत्येक कार्य धर्म से अनुशासित था। विभिन्न देवी, देवताओं, पूजा, व्रत, उपवास, नियम, धार्मिक विश्वास आदि का जो विवरण है उससे इस बात की पुष्टि होती है कि जीवन के प्रत्येक महत्त्वपूर्ण अवसर पर किसी न किसी प्रकार के धार्मिक कृत्य सम्पन्न किये जाते थे ।

उपसंहार

भारतीय संस्कृति में धार्मिकता और आस्तिकता का महत्त्वपूर्ण स्थान है। राज समुद्र के प्रतिष्ठा महोत्सव के अवसर पर तथा दैनिक जीवन में जो धार्मिक क्रिया–कलाप व अनुष्ठान सम्पन्न किए जाते थे उनकी यथेष्ठ जानकारी हमें राजरत्नाकर महाकाव्य से प्राप्त होती है। कवि के वर्णन से यह भी ज्ञात होता है कि मेवाड़ का शासक वर्ग तथा साधारण वर्ग धार्मिक कार्यों में अत्यधिक रुचि रखता था। विभिन्न प्रकार के धार्मिक उत्सवों का आयोजन किया जाता था, जीवन का हर पक्ष धर्म से निर्देशित था।

इस प्रकार राजरत्नाकर के अध्ययन से हमें तत्कालीन देवी–देवता, मंदिर–निर्माण, मूर्ति प्रतिष्ठा, व्रत, उपवास, नियम, बलि, श्राद्ध, त्यौहार , नारी की धार्मिक भागीदारी, पूजा, धार्मिक विश्वास व दानवृत्ति की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। धर्म मेवाड़ के साधारण जन के रग–रग में समाया हुआ था। उपर्युक्त वर्णन से प्रतीत होता है कि राजसिंह व राजरत्नाकर के वर्णनानुसार मेवाड़ राज्य में सर्व धर्म सम–भाव था उस समय सभी धर्मों को मानने वालों को पूर्ण स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- 1. अणियान् क्षुरधाराया गरीयानपि पर्वतात्–महाभारत शान्तिपर्व 260 / 12
- 2. मनुस्मृति 2 / 12
- 3. पृथ्वीं धर्मणा धृताम्–अथर्ववेद 12 / 1 / 17
- 4. ऋग्वेद 7 / 104 / 12
- 5. तैत्तिरीय ब्राह्मण 3 / 7 / 7 / 4
- 6. वाल्मीकि रामायण 2 / 21 / 4
- 7. महाभारत सभापर्व 61 / 41
- 8. राजरत्नाकर महाकाव्य 1.1
- 9. वही– 14.4
- 10. वही –20.16
- 11. वही –1.2
- 12. वही –3.23
- 13. वही –5.1
- 14. वही –20.11
- 15. वही –10.3
- 16. वही –8.4
- 17. वही –20.15
- 18. वही –23.26
- 19. वही –19.3
- 20. वही –3.46
- 21. वही –7.13

♦❐♦